शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जीवन के संघर्ष और आत्मा की विजय का प्रतीक : 'असाध्य वीणा'

डॉ.मनीष कुमार भारती
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार, भारत

शोध संक्षेप

आँगन के पार द्वार काव्य संग्रह में संकलित 'असाध्य वीणा' एक लम्बी कविता है, जिसमें अज्ञेय ने साधना, त्याग, और ज्ञान की तलाश जैसे गूढ़ विषयों को वीणा के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह कविता एक रूपक है जो जीवन के रहस्यों और सत्य की खोज की ओर इंगित करती है। 'असाध्य वीणा' यहाँ जीवन के उस तत्व का प्रतीक है, जो साधना के बिना उपलब्ध नहीं हो सकता। यहाँ वीणा एक प्रतीक के रूप में उभरती है। यह प्रतीक है उस सृजनात्मकता का जो केवल आत्मत्याग समर्पण और साधना द्वारा प्राप्त की जा सकती है। वीणा को बजाने का अर्थ है सृजन के उस शिखर को छूना जो मानव की सीमाओं से परे है। इस कथा में वीणा को बजाने का प्रयास करने वाला कलाकार अंततः यह समझ जाता है कि वह इसे केवल तभी बजा सकता है, जब वह अपने अहंकार का त्याग कर दे। यह आत्मत्याग का सिद्धांत भारतीय दर्शन में भी प्रमुख है जो साधक को अपने लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है। अतः यहाँ वीणा मानव की साधनाए उसकी उच्चतम सृजनात्मकता और उसकी आंतरिक यात्रा का प्रतीक बन जाती है। असाध्य वीणा में रहस्यवाद की गहरी छाया है। कविता में नायक अपने अहंकार और स्वार्थ को त्यागने के बाद ही वीणा को छू पाता है। यह अनुभव रहस्यवाद के उस पहलू को प्रस्तुत करता है जहाँ साधक अपने अहंकार और व्यक्तिगत इच्छाओं का त्याग कर आत्मा और ब्रह्म के एकत्व को अनुभव करता है।

बीज शब्द : *रहस्यवाद, आंतरिक यात्रा, अहंकार, आत्मत्याग, असाध्य, अस्तित्व, समर्पण, अध्यात्म, आत्मसंघर्ष*

'असाध्य वीणा' में अज्ञेय ने एक ऐसी वीणा का वर्णन किया है जो साधारण वीणा नहीं है, बल्कि एक असाध्य, दिव्य और दार्शनिक प्रतीक है। यह वीणा उस आदर्श की ओर संकेत करती है, जो हर रचनाकार और कलाकार की साधना का लक्ष्य होती है। कविता का प्रारंभ एक असाधारण वीणा के बारे में जानकारी से होता है, जिसे बजाने की कला कठिन मानी जाती है। यह वीणा एक महल के गर्भगृह में रखी गई है और इसे बजाने के लिए अनेक साधकों ने प्रयास किए हैं, लेकिन असफल रहे हैं। यह कविता भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के अद्वैतवाद के निकट है, जहाँ साधक का परमात्मा में विलय होता है। वीणा के माध्यम से अज्ञेय ने यह स्पष्ट किया है कि सृजन अपने उच्चतम रूप में केवल उसी को प्राप्त होता है जो स्वयं के परे जाकर अपने अस्तित्व को विलीन कर सके।

"लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े । लाये असाध्य वीणा,
साधक के आगे रख उस को, हट गये।
सभी की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लखए टिक गयीं
प्रियंवद के चेहरे पर।"[1]

यह कविता एक ऐसी वीणा की कथा है, जिसे बजाने में हर कोई सक्षम नहीं होता और इसे बजाने का प्रयास करने वाला बहुत कुछ खोकर ही उसे प्राप्त कर सकता है। रामदरश मिश्र ने लिखा है, 'असाध्य वीणा' में इस छोटी-सी कथा

E ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2024

का इस्तेमाल एक अवधारणा की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है, जो प्रतीकात्मक होने के कारण लौकिक और अलौकिक दो स्तरों पर चरितार्थ होती है। लौकिक स्तर पर किरी तरु समष्टि का प्रतीक है । अलौकिक स्तर पर वह ब्रह्म है, महामौन है जिसमें संगीत सोता है, विराट् है जो आकाश से लेकर पाताल तक व्याप्त है, जो नाना ध्वनियों और गतियों का साक्षी और गृहीता है। उसी से वीणा बनी है। अतः वीणा में भी वे सारी गतियाँ व ध्वनियाँ हैं। वीणा व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व का प्रतीक है। उसे वही बजा सकता है अर्थात् उसमें से संगीत की सृष्टि कर सकता है जो महामौन या ब्रह्म का साधक हो। अहंकार लेकर उसे नहीं बजाया जा सकता। पूर्ण समर्पण से ही उसे पाया जा सकता है।"[2] कविता का प्रमुख प्रतीक वीणा है, जो यहाँ गूढ़ ज्ञान और साधना का प्रतिनिधित्व करती है। असाध्य वीणा का मतलब ही है ऐसी वीणा जिसे आसानी से नहीं बजाया जा सकता। इसमें जीवन के अनुभव, योग्यता और साधना की आवश्यकता को दर्शाया गया है। इस प्रतीकात्मकता के माध्यम से अज्ञेय एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण करते हैं जो उस वीणा को बजाने की क्षमता और अधिकार प्राप्त करने के लिए तप और ध्यान में जुटा रहता है। अज्ञेय की यह कविता जीवन के उस पहलू को प्रस्तुत करती है जिसमें किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष, साधना और स्वयं का अर्पण आवश्यक है। कविता का नायक साधक के रूप में प्रस्तुत है, जो हर कठिनाई के बावजूद असाध्य वीणा को साधने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह प्रतीक एक साधक की यात्रा का दार्शनिक और आध्यात्मिक रूपक बन जाता है। 'असाध्य वीणा' का दार्शनिक पक्ष गहन और सारगर्भित है। यहाँ वीणा केवल एक संगीत वाद्य नहीं, बल्कि जीवन के रहस्यों की खोज का प्रतीक बन जाती है। यह एक साधक की अंतहीन यात्रा का प्रतीक है, जहाँ वह अपने अस्तित्व का अर्थ खोजने के लिए अपने आप को एक गहरे आत्मसंघर्ष में झोंक देता है।

अज्ञेय की यह कविता इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि किसी भी महान उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना और आंतरिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है। यह कविता इसी संघर्ष को गहराई से दर्शाती है और साधना, ज्ञान और मुक्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग की बात करती है। अज्ञेय की कविता का मुख्य संदेश यह है कि सत्य और ज्ञान प्राप्ति का मार्ग कठिन और साधना से भरा होता है। असाध्य वीणा की साधना करते हुए साधक का बारबार विफल होना जीवन की कठिनाइयों और चुनौतियों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। यह भी बताया गया है कि इस साधना में व्यक्ति की आंतरिक प्रवृत्तियाँ और जीवन के उच्चतम उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करना ही उसे सफलता की ओर ले जाता है। बच्चन सिंह लिखते हैं, "असाध्य वीणा साहित्य साधना की संकेतक है। प्रियंवद की तरह इसकी साधना में आत्म शोध (आत्मान्वेषण) करना पड़ता है, अहं का विसर्जन करन पड़ता है। शब्द से अ-शब्द की ओर जाना पड़ता है। लोग इसकी झंकृति को अपने-अपने ढंग से लेते हैं अर्थात् कविता में अर्थ की अनेक परतें होती हैं। अन्यत्र विसर्जन में द्वैत बना रहता है किन्तु यहाँ पर विसर्जन की पूर्णता है अद्वैत है। कलाकृति के रूप में यह महत्त्वपूर्ण रचना है। आधुनिकतावादी रचना। इतिहास से कटी हुई।"[3] रामस्वरूप चतुर्वेदी ने राम की शक्ति पूजा और असाध्य वीणा की तुलना करते हुए कहा है कि "अज्ञेय ने पश्चिमी मृत्यु के आतंक

E ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2024

को भारतीय जीवन प्रियता और आस्था के सहारे अतिक्रमित करना चाहा है। इससे इनके कृतित्व का महत्वाकांक्षी रूप ही प्रमाणित होता है, जिसने आधुनिक संदर्भों में भारतीय रचना परंपरा को समृद्ध किया है। सृजन के इस रहस्य की आत्मदान के रूप में व्याख्या रचनाकार के आँगन के पार द्वार में संकलित लंबी कविता असाध्य वीणा में की है, जो अपने गठन में निराला की राम की शक्ति पूजा का स्मरण दिलाती है। दोनों कविताओं में शक्ति और सृजन को अंतर और बाह्य की टकराहट में देखने का यत्न किया गया है। शक्ति पूजा के अंत में है :

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन

और असाध्य वीणा को साधने वाला केशकंबली अंत में कहता है

श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में

अपने और सब कुछ का यह अद्वैत निराला और अज्ञेय को गहरे संवेदनात्मक स्तर पर जोड़ता है। आत्मदान के माध्यम से शक्ति पूजा के राम शक्ति साधन करते हैं और आत्मदान के ही माध्यम से असाध्य वीणा का कलावंत वीणा को साधता है। यही शक्ति और सृजन के रहस्य का साक्षात्कार है। निराला ने अपने लिए कथानक बंगाल में प्रचलित रामकथा से चुना, अज्ञेय ने एक जापानी लोक कथा से। अलग-अलग देश काल में ढली मूर्तियों को इन कलाकारों ने सहज पत्थर मानकर उसके खंडों से फिर नयी रचना की।"[4] 'असाध्य वीणा' सृजन के उस आयाम का आख्यान करती है, जहाँ रचनाकार अपने को उस परम सृष्टा का माध्यम मान लेता हैए, जो सारी व्यक्त सत्ता का मूल है। असाध्य वीणा का कथ्य कहाँ से उठाया गया, इसकी खोज जरूरी नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वीणा क्यों असाध्य थी और अन्ततः वह कैसे सधी और किसके हाथों सधी। असाध्य वीणा जिस दरबार में पड़ी थी, उसका भी उतना महत्त्व नहीं। महत्त्व है उस वीणा की निर्मिति का। कवि कहता है कि वह वीणा वज्रकीर्ति द्वारा मन्त्रपूत प्राचीन किरीट तरु से गढ़ी गई थी। जिस किरीट तरु के कानों में हिम शिखर अपने रहस्य कहा करते थे। जिसके कन्धों पर बादल सोते थे, उसकी डालें करि शुण्डों सदृश थीं, जो वन यूथों का परित्राण हिम वर्षा से करता रहता था, जिसके कोटर में भालू बसते थे, जिसके वल्कल से केहरि अपने कन्धा खुजलाते थे, जिसकी जड़ें पाताललोक तक पहुँची हुई थीं जिसकी गन्ध प्रवण शीतलता से अपना फन टिकाकर नागवासुकि सोता था। उस किरीट तरु से वज्रकीर्ति ने उस वीणा को अपने सम्पूर्ण जीवन की साधना झोंक कर गढ़ा था। वज्रकीर्ति ऐसा हठ साधक था, जिसने अपने सम्पूर्ण जीवन की साधना से उस वीणा का निर्माण किया था। उस वीणा के निर्माण की प्रक्रिया में ही उस साधक का जीवन समाप्त हो गया। इधर वीणा का निर्माण पूरा और उधर निर्माता की जीवन लीला समाप्त हो गयी। रह गयी वीणा, जो असाध्य बन गई। कोई कलाकार उस वीणा के तारों को झंकृत नहीं कर पाया। राजदरबार में रखी वह वीणा अनेक कलाकारों के समक्ष प्रस्तुत की गई, परन्तु कोई भी कलाकार उसे झंकृत नहीं कर सका। वीणा का नाम ही असाध्य वीणा ख्यात हो गया :

"वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी.तरू से इसे गढ़ा था
उसी किरीटी तरू से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ाः
हठ साधना यही थी उस साधक की

वीणा पूरी हुई साथ साधना, साथ ही जीवन लीला।
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा स्वरसिद्ध गोद में लेगा।"[5]

अज्ञेय की यह कविता बहुत ही गहन और भावनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है, पूरी कविता मौन से स्वर की ओर जाने की और स्वर से पुनः मौन की ओर लौटने की एक ओर व्यष्टि से समष्टि में डूबने की तथा समष्टि से व्यष्टि में अलग-अलग उतरने की प्रक्रिया का एक आख्यान है।"[6] विद्यानिवास मिश्र ने असाध्यवीणा के जिस महत्त्वपूर्ण पक्ष को रेखांकित किया है वह मौन और स्वर का पारस्परिक संबंध है। साधारण जीवन में प्रतीत होता है कि मौन और स्वर दो विपरीत स्थितियाँ हैं लेकिन असाध्य वीणा पढ़कर महसूस होता है कि हर स्वर अंततः परम मौन की ही अभिव्यक्ति है। मौन से स्वर और स्वर से मौन की यात्रा का अर्थ तो कविता में दिखता ही है। असाध्य वीणा की निर्मिति जब से हुई तब से वह झंकृत नहीं हुई है। बड़े.बड़े कलावंत उसे झंकृत करने में असफल रहे हैं। प्रियंवद की साधना अन्य कलाकारों से अलग है। बाकी कलावंत वीणा को साधने में लगे है किन्तु प्रियवंद स्वयं को वीणा में समर्पित करने के लिए प्रयासरत है। वह आत्मशोधन की प्रक्रिया में लीन होना चाह रहा है। असाध्य वीणा बाहर से भीतर मुड़ने की प्रक्रिया है जिसे अंतर्मुखी होना भी कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन में इसे 'तथता' कहा गया है जिसमें स्वयं को देकर ही सत्य को पाया जा सकता है, अज्ञेय की इस कविता की अभिव्यक्ति भी यही है। इस अभिमंत्रित कारूवाद्य के सम्मुख प्रियवंद को वीणा के समक्ष नतमस्तक देखकर सम्पूर्ण सभा हतप्रभ थी। सभी के हृदय में प्रियवंद की सफलता के प्रति शंका उत्पन्न हो रही थी, परन्तु प्रियवंद वस्तुतः अपनी अंतश्चेतना से सम्पृक्त होता हुआ बाह्य संसार से पूर्णतया कट चुका था। इस प्रकार वह आत्मनिर्वासित-सा होकर उस असाध्य वीणा व अतिप्राचीन किरीटी तरू से अपना तादात्मय स्थापित कर रहा था :

"पर उस स्पन्दित सन्नाटे में,
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीट तरु को।"[7]

यह मौन साधना गहरी होती गई। धीरे-धीरे प्रियंवद आत्मसाक्षात्कार के स्तर पर पहुँचा और उसने अपने भीतर वे सभी स्वर सुने जो किरीटी तरु में समाहित थे। अज्ञेय की इस कविता में शब्दों का प्रयोग अत्यंत संवेदनशील और गहरे भावों को अभिव्यक्त करता है। वे प्रकृति के साथ तन्मय होकर जीवन की गूढ़ता और रहस्य को समझने का प्रयास करते हैं।

"श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय

जो शब्दहीन
सब में गाता है।"[8]

जब प्रियंवद अहंकार रहित नतमस्तक होकर किरीटी तरु से कहता है अपने "जीवन संचय को कर छन्दयुक्त, अपनी प्रज्ञा को वाणी दे ! तू गा, तू गा"[9] और सहसा वीणा झनझना उठी संगीतकार की आँखों में ठण्डी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी :

रोमांच एक बिजली-सा सब के तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिस में सोता है अखण्ड
ब्रह्म का मौन
अशेष प्रभामय।"[10]

असाध्य वीणा में मूल भाव के रूप में अहं के विलय पर विचार किया गया है। जिस प्रकार मध्यकाल में कबीर अहं के विलय की बात करते हैं, वे कहते हैं जब मैं था तब हरि नहीं। अब हरि है मैं नाहिं ।। अज्ञेय की इस कविता की अभिव्यक्ति भी है अगर वीणा को साधना है तो इस मैं को त्यागना होगा। विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं, "गुफा गेह में रहने वाला केशकंबली प्रियवंद कलावन्त के रूप में नहीं बल्कि एक शिष्य साधक के रूप में वीणा के प्रति अपने को अर्पित करता है। ठीक-ठीक कहें तो अपनी व्यष्टि को उस समष्टिमयी समाहित वाणी में निःशेष भाव से डुबा देता है और उस समष्टि के प्रत्येक जीवनस्पर्शी मुखरित क्षण के साथ अपनी व्यष्टि का सीधा और रागात्मक तादात्मय स्थापित करता है। जब यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है, तब वीणा बज उठती है। व्यक्ति का अभिमान विराट् के प्रति अर्पित होकर विराट को गतिशील बना देता है। जब तक व्यक्ति के भीतर विराट निजता के सम्बन्ध से स्थापित नहीं होता, तब तक वह एक अभिमन्त्रित जड़ पदार्थ बना रहता है।"[11]

अज्ञेय व्यक्ति और समाज के सामंजस्य की सृजनात्मकता की चिंता करते हैं लेकिन यहां व्यक्ति गौण है और व्यक्तित्व सर्वोपरि है। अज्ञेय व्यक्ति और समाज को व्यक्तित्व के स्तर पर एक करना चाहते हैं और जब व्यक्ति स्वयं को भूलकर वीणा को अपना सर्वस्व मान लिया तो वीणा बज उठी। अज्ञेय यह मानेत हैं कि व्यक्ति का मूल व्यक्तित्व समाज द्वारा निर्धारित होता है, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही उसके व्यक्तित्व को गढ़ती हैं। नदी के द्वीप में भी उनका यह भाव प्रबल रूप से अभिव्यक्त हुआ है। असाध्य वीणा में जब व्यक्ति स्वयं को सबकुछ समझता रहा तब तक वीणा से ध्वनि उत्पन्न नहीं हुआ। और जब अहं को त्याग कर आगे बढ़ा तो वीणा झंकृत हो गयी। प्रियंवद संगीत को साध सका तो सिर्फ इसलिए कि वह जानता है कि यह सारा संगीत परंपरा अर्थात् समाज की संपत्ति है न कि उसकी व्यक्तिगत उपलब्धि। कविता इस संबंध में कहती है.

"मुझे स्मरण है
पर मुझको मैं भूल गया हूँ
सुनता हूँ मैं
पर मैं मुझसे परे, शब्द में लीयमान।"[12]

असाध्य वीणा में भी अज्ञेय का यही स्थायी भाव व्यक्त हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, किन्तु वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न तथा अनूठा है। जिस समाज में सभी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुकूल कर्म करते हैं, वहां क्रांतिकारी परिवर्तन स्वयं हो जाता है। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री अपने संस्मरण में लिखते हैं, "उनका विश्वास था कि मुक्त, कुण्ठा रहित व्यक्तियों के सहयोग से ही शक्तिशाली

शब्द-ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

समाज बन सकता है। बड़ा और घना वन जिस तरह बड़े और घने वृक्षों की समष्टि है उसी तरह उन्नत, स्वतन्त्र और विवेकी व्यक्तियों के आधार पर ही सचमुच बड़ा समाज निर्मित हो सकता है।"[13] अज्ञेय ने अपनी अपनी अन्य रचनाओं की तरह असाध्य वीणा में भी व्यक्ति समाज संबंधों पर अपनी ठोस राय व्यक्त की है। शायद यहां भी उनकी यही अभिव्यक्ति है कि व्यक्ति समाज में स्वतंत्र है, किन्तु समाज से नहीं।

अज्ञेय की भाषा अत्यंत प्रतीकात्मक और बिम्बात्मक है। उन्होंने अपनी भाषा को सरल रखा है, किंतु उसमें गहराई और दार्शनिकता का समावेश है। तत्सम एवं तद्भव शब्दों का कौशलपूर्ण संगुफन अज्ञेय की काव्य भाषा की विशिष्ट पहचान है। 'असाध्य वीणा' में तद्भव प्रकृति बहुत मार्मिकता के साथ व्यक्त हुई है विशेष रूप से उस प्रसंग में जहाँ वीणा के संगीत का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर स्वधर्म के अनुकूल पड़ता है :

"उसे,
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुदबुद
किसी एक को नयी वधू की सहमी सी पायल ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।'[14]

अज्ञेय की काव्य भाषा में मौन की प्रमुख भूमिका रही है। उनकी कविताओं में मौन गहरी अर्थवत्ता को धारण करता है। मौन की स्थिति असाध्य वीणा में अपेक्षतया विस्तार से अंकित हुई है

"सुना आपने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।"[15]

संपूर्ण असाध्य वीणा की प्रकृति बिम्बधर्मी है। वीणा के प्रतीक से लेकर साधक के आत्मत्याग तक, हर बिम्ब गहरे अर्थ को उजागर करता है। इसमें दृश्य, ध्वनि, स्पर्श आदि बिम्बों का सफल प्रयोग हुआ है :

दृश्य बिम्ब : संगीतकार ! वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक मानो।[16]

ध्वनि बिम्ब : चौके खग शावक की चिहुँक।'[17]

स्पर्श बिम्ब : "और चित्र प्रत्येक... स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझको।"[18]

अज्ञेय की काव्य भाषा में संगीतात्मकता और लय है, जो पाठक को उस रहस्यमय वातावरण में प्रवेश कराती है, जहाँ साधक और वीणा का संबंध अत्यंत गूढ़ रूप में प्रकट होता है। अज्ञेय ने अपनी इस रचना में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है, जिससे कविता का शिल्प और प्रभावशील हो जाता है। इससे पाठक को भी प्रतीक के रूप में साधना और आत्मत्याग की गंभीरता का बोध होता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "अज्ञेय ने मानवीय व्यक्तित्व की व्याख्या में भाषा को अनिवार्य तत्त्व माना है। भाषा उनके लिए माध्यम नहीं है, अनुभूति है।'[19] रामदरश मिश्र उल्लेख करते हैं कि 'असाध्य वीणा एक लम्बी कविता है और कथा के माध्यम से तथा अनेक बिम्बों के माध्यम से भी जीवन के कई आयामों से गुजरती है, इसलिए भाषा भी अनेक रूपात्मक हो उठी है। जैसे कथाकथन के समय भाषा अभिधात्मक हो उठी है। अनेक छोटे-छोटे सामान्य अर्थबोध कराने वाले शब्दों की राशि यहाँ दिखायी पड़ती है। यह भाषा अपेक्षाकृत गद्य के समीप की भाषा है किन्तु चूँकि इसमें

E ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2024

कथा की भूमिका बहुत छोटी है इसलिए ऐसी भाषा कम ही है। इस कविता में बिम्बों की भूमिका बड़ी है। भाषा प्रायः बिम्बात्मक ही है। संवेदना के अनुसार भाषा अपनी शब्द योजना में, वाक्य-विन्यास में अलग हो उठती है।"[20]

'असाध्य वीणा' में उनकी भाषा का सौंदर्य पाठक को भीतर तक स्पर्श करता है। इस कविता में शब्दों का चयन और वाक्य विन्यास ऐसा है जो पाठक को उस मानसिक स्थिति में पहुँचा देता है, जिसमें साधक स्वयं को पाता है। कविता में बिंबों और प्रतीकों का अद्भुत संयोग दिखाई देता है। उनका यह शिल्प पाठक को साधक की उस मानसिक स्थिति से जोड़ देता है जहाँ वह वीणा को साधने का प्रयास कर रहा होता है। 'असाध्य वीणा' एक विशिष्ट सृजनधर्मिता और गहन अर्थव्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कविता अपनी रूपकात्मकता, प्रतीकात्मकता, और गहन बिंबों के कारण पाठक को चिंतन की नई दिशा में ले जाती है।

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि असाध्य वीणा एक ऐसी काव्यकृति है, जो सृजनात्मकता और आत्मसाक्षात्कार की गहरी अनुभूति कराती है। यह कविता केवल एक वीणा को बजाने का प्रयास नहीं, बल्कि जीवन के उस आदर्श की ओर एक संकेत है, जिसे प्रत्येक साधक अपने साधन पथ पर प्राप्त करना चाहता है। अज्ञेय ने इसे एक प्रतीकात्मक कथा के रूप में प्रस्तुत कर न केवल अपनी सृजन शक्ति का परिचय दिया, बल्कि हिंदी साहित्य को एक अनमोल कृति भी प्रदान की। 'असाध्य वीणा' को पढ़ते हुए पाठक को एक आंतरिक यात्रा का अनुभव होता है, जो उसे आत्मबोध, सृजनात्मकता और साधना के गूढ़ रहस्यों से परिचित कराती है। इस प्रकार यह काव्यकृति आधुनिक हिंदी काव्य में अपना विशेष स्थान रखती है और अपने पाठकों को आत्म मंथन के लिए प्रेरित करती है। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' न केवल काव्य सौंदर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है, बल्कि इसमें जीवन के गूढ़ रहस्यों को अत्यंत सरल, किंतु प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया गया है। 'असाध्य वीणा' कलाकार की उस आंतरिक यात्रा को भी दर्शाती है, जहाँ उसे अपने सृजन के लिए अपनी समस्त सीमाओं का अतिक्रमण करना होता है। यह यात्रा आसान नहीं होती, यह एक ऐसी साधना है जिसमें त्याग, तप और आत्मानुभव का सम्मिलन होता है। यह कविता कलाकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत है, जो अपने सृजनात्मक कार्य के प्रति समर्पण और त्याग का मार्ग दिखाती है। अज्ञेय ने इसमें यह संकेत दिया है कि कला और साधना का चरम लक्ष्य केवल वही साधक प्राप्त कर सकता है, जो अपने भीतर के संपूर्ण अहंकार को मिटा देता है और अपने आप को सृष्टि का अभिन्न हिस्सा मानकर अपने व्यक्ति होने के गर्व को छोड़कर अहंकारविहीन व्यक्तित्व का निर्माण करने की दिशा में अग्रसर हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौदहवां सं. वर्ष 2022, पृष्ठ 69

2 सं. अनूप प्रो. वशिष्ठ, असाध्य वीणा की साधना : मूल्यांकन और पाठ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय सं 2023, पृष्ठ 15

3 सिंह बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सत्रहवां सं. वर्ष 2023, पृष्ठ 427

4 चतुर्वेदी रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2017, पृष्ठ 197

5 अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौदहवां सं. वर्ष 2022, पृष्ठ 70

6 सं. अनूप प्रो. वशिष्ठ, असाध्य वीणा की साधना, मूल्यांकन और पाठ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय सं 2023, पृष्ठ 2

7 अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौदहवां सं. वर्ष 2022, पृष्ठ 71

8 सं. अनूप प्रो. वशिष्ठ, असाध्य वीणा की साधना : मूल्यांकन और पाठ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय सं 2023, पृष्ठ 79

9 अज्ञेय, आँगनके पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौदहवां सं. वर्ष 2022, पृष्ठ 76

10 सं. अनूप प्रो. वशिष्ठ, असाध्य वीणा की साधना : मूल्यांकन और पाठ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय सं 2023, पृष्ठ 76

11 वही, पृष्ठ 2

12 अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौदहवां सं. वर्ष 2022, पृष्ठ 75

13 शास्त्री विष्णुकांत, सुधियाँ उस चन्दन के वन की, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं. वर्ष 2021, पृष्ठ 52

14 वही, पृष्ठ 77

15 वही, पृष्ठ 79

16 वही, पृष्ठ 79

17 वही, पृष्ठ 73

18 वही, पृष्ठ 75

19 चतुर्वेदी रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2017, पृष्ठ 197

20 वही, पृष्ठ 20